International Journal of Applied Research 2020; 6(10): 94-96

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(10): 94-96
www.allresearchjournal.com
Received: 09-08-2020
Accepted: 11-09-2020

संगीता कुमारी
शोधार्थी, गृहविज्ञान विभाग, जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
संगीता कुमारी
शोधार्थी, गृहविज्ञान विभाग, जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

कामकाजी महिलाएँः समस्याएँ एवं समाधान (वर्त्तमान परिवेश के संदर्भ में)

संगीता कुमारी

सारांश
भारत में यदि नारी मुक्ति का बिगुल बजा है तो केवल एक ही सुर में, यानी महिलाओं को घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर कामकाज में संलग्न कर दीजिए और समझ लीजिए कि बहुत बड़ा अहसान महिलाओं के ऊपर कर दिया है, किंतु यह यक्ष प्रश्न हमेशा रहेगा कि क्या सचमुच महिलाओं के घर से निकलने तथा कामकाजी होने मात्र से उनकी समस्याओं का निदान हो जाएगा? या क्या वे वास्तव में शोषण से मुक्त हो जाएँगी? आजादी के बाद नारी शिक्षा की स्थिति में सुधार के कारण उच्च मध्यवर्गीय के साथ–साथ आम शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की नारियाँ भी शिक्षित हुई और उन्होंने अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश की। कई महिलाओं ने उसमें सफलता भी प्राप्त की, लेकिन पितृवादी सोच हमेशा उनके आड़े आती है, जो उनकी परेशानियों का कारण बनती है। घर के बाहर की समस्या ऑफिस में अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या कम। फलतः वे पूरी तरह से सहज नहीं हो पाती हैं।

प्रस्तावनाः
देश में कामकाजी महिलाओं का इतिहास कोई बहुत नहीं है। इसे यूं मान लेना चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में ''स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत से प्रभावित होकर महिलाओं में आत्मनिर्भरता के लिए जो नई सोच, नई चेतना पैदा हुई, यह उसी का परिणाम है। स्त्री शिक्षा में जो प्रगति हुई, उसी ने इस क्षेत्र में लोगों को उत्साहित किया। अच्छे जीवन स्तर की इच्छा को बल मिला। महिलाओं को नौकरी करनी चाहिए या नही, यह बहुत पुराना विवाद है। इस पर आज तक कोई सर्वमान्य निर्णय न हुआ, न होगा। भविष्य में इस बारे में लोगों की क्या मान्यता होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि स्त्रियों को पारिवारिक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए नौकरी अवश्य करनी चाहिए। इस विषय में किसी प्रकार की हीनता अथवा पूर्वाग्रही सोच मन में नहीं आनी चाहिए।
अच्छा जीवन जीने का अधिकार सब को हैं। विशेषकर नई पीढ़ी के युवक–युवतियों को, जिनकी सोच व्यापक है। संतोषी सदा सुखर की मान्यता को अब उतनी प्रतिष्ठा नहीं मिलती और यह विचार भी धीरे–धीर प्रभावहीन होने लगा है, जो आज से तीस–चालिस वर्ष पूर्व थी। भौतिकता की चमक ने नई पीढ़ी को अवश्य प्रभावित किया है, लेकिन इसका अन्त भी लोगों की समक्ष में आने लगा हैं। भोग की कोई सीमा नहीं होती, फैशन और ग्लैमर मृगतृष्णा–भरी सोच हैं। इसका कोई अन्त नही। इन बंद गलियों में भटकने के बाद, गुमराही के अंधेरों से निकलने के बाद एक ही आशा बचती है और वह है– नैतिक आचरण।
नैतिक सोच का यह व्यवहार और आचरण हमारी अनेक समस्याओं का समाधान हैं। कामकाजी महिलाओं की सोच में यह अंतर तो आना ही चाहिए कि वे नौकरी करके परिवार पर उपकार तो कर रही हैं, लेकिन इस उपकार का प्रदर्शन करने की भावना मन में नहीं आनी चाहिए अन्यथा यही उपकार अभिशाप बन जाएगा और विकृति पैदा करने लगेगा।
'पति–पत्नी, दोनों यदि एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए परिवार के दायित्वों को अच्छी प्रकार से पूरा करते है, तो उसमे अनुचित क्या है? इस 'ईगो' का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि नौकरी–पेशा महिलाओं सें 'उच्चता' का भाव आने लगता हैं। जबकि यह भाव उनकी भ्रामक सोच के कारण आता हैं अतः परिवारिक हितों के लिए पति–पत्नी, दोनों यह प्रयास करें कि इस 'ईगो' को धर में न आने दें।
स्वतंत्र भारत के गत पचास वर्षो में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है उन सब का प्रभाव हमारे पारिवारिक जीवन पर पड़ा हैं यह सत्य है कि देश के पिछले पचास वर्षो में शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, कृषि, औद्योगिक विकास, दूर संचार, कला, तकनीकी क्षेत्रो में जो प्रगति की है, उसे देख कर लगता है कि भारत विश्व की एक शक्ति बन गया है।

जहाँ तक सामाजिक जीवन में परिर्वतन का संबंध है, उसमें भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। लागों का जीवन स्तर बढ़ा है और मानसिक सोच में बड़ा भारी अंतर आया है। खान–पान, पहनावा और जीवन–शैली बदली है।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवारहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता होने का पूरा–पूरा श्रेय है। इनके हाथो में 1962 तक देश की बागडोर रही। पं. नेहरू स्वयं बड़ी प्रगतिशील सोच वाले व्यक्ति थे और चाहते थे कि देश का प्रत्येक नागरिक बेहतर जिंदगी जिए। देश की खुशहाली, समद्धि और विकासित के लिए उन्होंने पंचवर्षीय योजनओं का विचार देश के सामने रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि इन योजनाओं के द्वारा संदेश की समृद्धि का स्वप्न पूरा हुआ। इन योजनाओं कि क्रियान्वन से लाखो लोगों को रोजगार के अवसर मिले। दूसरी तरफ इन योजनाओं के लिए भरपूर विदेशी सहायता उपलब्ध हुई, जिसका प्रभाव यह हुआ कि देश में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। शिक्षा के प्रचार–प्रसार से देश में शिक्षित–युवितयों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढने लगी। खेतों और कारखानो में बढ़ते उत्पादन से विदेशी व्यापार में भी भारी वृद्धि हुई।

सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा देश की 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को भी प्रगति की हवा लगने लगी। इन सब का परिणाम यह हुआ कि देश में औधोगिक नगरों का विकास हुआ। नई–नई औधेगिक बस्तियाँ बनी। भिलाई, दुर्गापुर राउरकेला, कानपुर, राजपुरा, नौएडा, लुधियाना आदि नए औद्योगिक केंन्द्र बनें। इन सब का परिणम यह हुआ कि देश में मुद्रास्फीति बढ़ी। रूपए की क्रय शक्ति कम हुई। देश की खुशहाली के इस उतार–चढ़ाव में सामाजिक और पारिवारिक जीवन में निम्न परिवर्तन हुएः

1) रहन सहन का स्तर बढ़ गया। अपने इस स्तर को बनाए रखने और उन्नति की नई ऊंचाइयों को छूने की चाह प्रत्येक व्यक्ति में बढ़ी। महिलाएं भी इससे अछूती न रहीं।
2) आरामदायक और विलासिता पूर्ण आवश्यकताएं बढ़ी। रेडियो, फ्रिज, स्कूटर जैसी वस्तुएं प्रतिष्टा–प्रतिक ;जंजने लउइवसद्ध बन गई।
3) अच्छे अंग्रजी सकूलों के प्रति लोगों का उत्साह बढ़ा और शिक्षा पर लोग अधिक पैसा खर्च करने लगे। इस प्रतियोगिता में हर व्यक्ति शामिल होने लगा। इससे पढ़ाई पर खर्च बढ़ी है।
4) स्त्री शिक्षा का प्रतिशत बढ़ा। स्त्रियां भी पढ़–लिखकर नौकरियाँ करने लगीं हैं। कामकाजी महिलाओं का एक नया वर्ग बन गया। महानगरों में इनकी संख्या बढ़ने के साथ–साथ छोटे शहरों और कस्बों में भी इनकी संख्या बढ़ने लगीं। जिस समाज में स्त्री की कमाई को अनुचित समक्षा जाता था, उसी समाज में स्त्री की कमाई से घर चलने लगे, और दोनों कमातें हैं यह बहुत गर्व की बात समझी जाने लगी।
5) पश्चिम का भारतीय जन जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। पश्चिम में स्त्री–पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं। शिक्षा और वैज्ञानिक प्रगति के इतिहास में वहां स्त्रियों का बड़ा योगदान रहा है। उन्हीं की प्रेरणा भारतीय स्त्रियों को मिली और वे बड़े आत्मविश्वास के साथ इन क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बनने की सोचने लगी। उनकी इस सोच और इच्छा को इन देशों आए प्रतिनिधिमंडलों, शिक्षा मंडलों ने बड़ा प्रभावित किया और स्त्रियां भी इन क्षेत्रों में भागीदारी निभाने लगीं। भारतीय स्त्रियों में अपने अधिकरों के प्रति इस प्रकार की जागरूकता को राजनीतिक स्तर पर भी प्रोत्साहित किया गया। इंदिरा गांधी, तारकेश्वरी सिन्हा, अम्बिका सोनी, अरूणा आदि ने महिलाओं में एक नई सोच पैदा की है।
6) शिक्षा, चिकित्सा, समाज सेवा, फैशन, सामुदायिक विकास, पुलिस, सेना आदि में स्त्रियों की मांग बढ़ी और वे दफ्तरों, होटलो, समाचार पत्रों, न्याय, पुलिस, सेना अन्य संस्थाओं तथा प्रयोगशालाओं में काम करने लगी। वास्तव में उनकी मौलिक प्रतिभा ने उन्हें इन क्षेत्रों में और भी अधिक सफलता दिलाई और कुछ ही वर्षो में स्त्रियों की संख्या लाखों में हो गई। टाइपिंग पर तो जैसे स्त्रियों का एकाधिकार ही हो गया।

इन सब का परिणाम यह हुआ है कि देश में आज कामकाजी महिलाओं की संख्या लगभग एक करोड़ हो गई हैं। कृषि और निर्माण कार्यो में तो पहले से महिलाएं सक्रिय हुआ करती थी, लेकिन अब उनका कार्य क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है। अब कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा हैं, जहां महिलाएं कुशलता से अपने दायित्वों को कुशलता से निभा रही है। स्वतंत्र भारत के तीसरे दशक और चौथे दशक में तो इन्हें आर्थिक क्षेत्रों में आरक्षण भी मिलने लगा। बैंक ऋण तथा अन्य अनेक सुविधाओं के कारण हजारों नई महिला उद्यमी अपने–अपने रोजगार भी लगाने लगीं। आर्थिक क्षेत्रों में आई इन महिलाओं के और कामकाजी महिलाओं के कारण सामाजिक क्षेत्रों में कुछ नई समस्याएं पैदा हुई। कामकाजी महिलाओं की विभिन्न प्रकृतियों एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में इन्हें निम्न वर्गो में बांटा जा सकता है। लगभग 80 प्रतिशत मध्यवर्गीय परिवारों की महिलाएं केवल आर्थिक संबल के लिए घर से बाहर नौकरी के लिए निकलती हैं। पारिवारिक आवश्यकताओं की आर्थिक संपूर्ति के लिए जहां पति अथवा पिता का हाथ बटाती हैं, वहीं अपने दहेज, पढ़ाई, परिवार के सदस्यों के प्रति समर्पित होकर नौकरी करती है। इस वर्ग में शिक्षिकाएं, नर्से, पैथोलोजी में काम करने वाली टेक्नीशीयन, दफ्तरो के काम करने वाली सहायिका, काउंटर पर बैठने वाली सेल्स गर्ल्स, होटलों के स्वागत कक्ष में बैठने वाली रिसेप्शनिस्ट, अखबार के दफ्तरो में कामकाजी महिलाएं, रेडियो–टी. वी. में काम करने वाली उद्घोषक आदि आती हैं। इस वर्ग की महिलाओं की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ नही होतीं, इसलिए ये अपने काम के प्रति बड़ी समर्पित रहती हैं।

घरेलू बंधनों से मुक्ति की चाह इनके लिए मृगतृष्णा ही साबित होती है, क्योकि हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ इस प्रकार की है कि परिवार में रहकर स्त्रियों इन बंधनों से मुक्त नहीं हो पाती। छोटे परिवार की अवधारणा इन महिलाओं का आदर्श होता हैं।

आप चाहे जिस आवश्यकता से प्रेरित और प्रभावित होकर नौकरी कर रही हों, लेकिन इतना अवश्य है कि कामकाजी होने के कारण आपको दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। इस संबंध में वास्तविक सोच यह है कि जब आप घर की चार दीवारी से निकल कर अपनी आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति से एक नई प्रगतिशील पहल कर ही रही हैं, तो इसे पूरे मनोयोग के साथ निभाएं और पूरी निष्ठा के साथ कामकाजी जिंदगी जिएं। आपको कामकाजी जिंदगी की सत्यता को सरल और सहज भाव से स्वीकारनी चाहिए। अपने इस निर्णय पर कभी पश्चात्ताप नहीं करना चाहिए। कामकाजी महिलाओं के अक्सर घर और दफ्तर में समय पर न आने की शिकायत बनी रहती है और वे अपनी इस आदत के कारण निंदा, विवाद और अविश्वास की पात्र बनी रहती हैं। अतः इस शोध के माध्यम से कामकाजी महिलाओं के उपर होने वाली विभिन्न समस्याओं पर गहन अध्ययन किया जाएगा।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति कमजोर होती हैं। वे शरीरिक रूप से भी पुरूष से कमजोर होती हैं। उन्हें अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को प्रकट करने के उतने अवसर नहीं मिलते, वे अपनी वस्तुस्थिति और मानसिक सौख को भी सरलता से प्रकट नहीं कर पातीं। संकोच और नारी सुलभ सहज लज्जा के कारण भी सत्य को उस प्रकार से प्रकट नहीं कर पातीं। इसलिए महिलाओं की इस कमजोरी का लाभ हमेशा पुरूष वर्ग को मिलता आया हैं। इस दीवार को नहीं तोड़ सकतीं, क्योंकि इस में भी शिष्टता, शालीनता के वही गुण हैं।

अतः अपनी शिष्टता और शालीनता को ही अपना संबल बनाना चाहिए और इसे कभी न छोड़ें।

अपनी संपन्नता, पद अथवा प्रभाव का कहीं भी दुरूपयोग न करें। लोकतांत्रिक व्यवस्था का यह पहला मूल मंत्र है। आप चाहे घर में हों अथवा संस्थान में, अपने आपको सुपर मानना और सुपर होने के अहम् को प्रदर्शित करन आपकी स्थिति को कमजोर करेगा। इससे बचना चाहिए। मर्यादित आचरण ही सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करता है। कामकाजी महिलाओं की स्थिति बत्तीस दांतों में जीभ जैसी होती है, जो जरा–सी भी असंतुलित होते दांतों के नीचे आकर कट जाती है। संस्थान में सहकर्मियों के साथ शिष्टता, उदारता, सहिष्णुता से पेश आना चाहिए, क्रोध, तनाव अथवा नाराजगी से किसी का दिल नही जीत सकतीं। अतः उपयुक्त शोध का विषय पर अध्ययन करना औचित्य होगा।

पति–पत्नी का सम्बन्ध बड़ा संवेदनशील होता है। इसे अपनी सूझ–बूझ सहनशीलता एवं सुख–दुःख में भागीदारी के साथ निभाना चाहिये शोध के माध्यम से यह पता चलता है कि आधुनिक युग में पति–पत्नी के मध्य अनेक कारणों से असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो रही है। लेविस एवं टर्मन ने सन् 1938 में 892 वैवाहिक दम्पतियों का अध्ययन करके कुछ निष्कर्ष निकाले थे। इलियट और मैरिल मानते हैं कि आज भी स्थिति वैसी ही है।

महिलाएँ कामकाजी तो सदा से रही हैं बल्कि घरेलू जिंदगी में कोल्हू के बैल की तरह जुटी हुई हैं। हाँ इतना अवश्य है कि बाहरी कार्यक्षेत्र में आने से उनके कार्य को महत्व मिला है जो उन्हें घरेलू कार्यों में कतई नहीं मिलता बल्कि घरेलू कार्यों को उनका जन्मसिद्ध अधिकार समझा जाता है, जिन कार्यों की न तो कभी तारीफें मिलती हैं और न ही उसका कोई मूल्य समझा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में जागृति आने से महिलाओं के कदम विभिन्न रोजगारों की ओर अग्रसर हुए हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1981 से 1991 के दशक में रोजगार में पुरुषों की संख्या 21.4 प्रतिशत बढ़ी है, जबकि महिलाओं के आँकड़ों में 42.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस तरह के आँकड़े महिलाओं में अंकुरित हुए आत्मविश्वास को दर्शाते हैं जो अपनी योग्यता, कार्यक्षमता से राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय भागीदारी दर्ज करा रही हैं।

लगता तो यही है कि रोजगार के क्षेत्र में कदम रखने से महिलाओं को कुछ फायदे नसीब हुए हैं किंतु वास्तव में उन्हें परंपरागत कठिनाइयों के अलावा समस्याओं का अंबार भी सौगात के रूप में मिला है। कोई भी महिला बाहरी तौर पर किसी कार्यक्षेत्र को अपनाने का निर्णय सदियों से चले आ रहे रूढ़ियों के भँवरजाल से निकलकर लेती हैं।

फिर उसका अपने कार्यक्षेत्र में बने रहना या न रहना आज भी उस पर स्वयं निर्भर न होकर विवाह पूर्व पालकों पर तथा विवाह पश्चात ससुराल पक्ष पर निर्भर करता है। वर्तमान में अधिकांश लड़के उसी लड़की को पत्नी बनाना स्वीकार करते हैं जो घरेलू कामकाज के साथ–साथ नौकरीपेशा भी हो। क्योंकि परिवार में सोने का अंडा देने वाली कामकाजी बहु आर्थिक सहारा सिद्ध होती है। इसीलिए कई बार यह भी देखने में आता है कि महिला स्वयं अपनी कमाई पर भी कोई अधिकार नहीं जता पाती उसे अपने वेतन का पूरा हिसाब घर में देना होता है। यदि घर में नौकर–चाकर हो तो उनका वेतन, राशन, बच्चों की फीस, दवाई, कपड़े आदि का खर्च पूरी तरह से उसके वेतन पर निर्भर करता है।

निष्कर्ष:

भारतीय कामकाजी महिला की स्थिति दो पाटो में फँसे धुन के समान हो गई है। उसे कार्यालय और घर दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। यदि वह दोनो में सन्तुलन स्थापित करने में असमर्थ होती है, तो उसे भारी निंदा का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक कामकाजी महिला का घरेलू जीवन दयनीय होता है, यह अवधारणा पूर्णतरू औचित्यपूर्ण नहीं है। आज भारतीय महिला सजगता और जिम्मेदारी से कार्यालय और घर के कार्यो को संभाले हुए है। घर को चलाने, पति के भार को कम करने और सुख सुविधाओं से सम्पन्न जीवन जीने के प्रति भारतीय कामकाजी महिलाओं के प्रयत्न स्तुत्य है। अर्थात् उन्हें अपने घर–परिवार, रिश्ते–नाते के साथ–साथ ऑफिस सबको ठीक से चलाना पड़ता है और इन सबमें प्रमुख है दोनों के बीच संतुलन, क्योंकि किसी एक पक्ष को गलती से भी इग्नोर करने पर जीवन की गाड़ी डगमगाने लगती है।

संदर्भ–सूची:

1. रानी, कला (1976) –रोल कन्फ्लिक्ट इन वर्किंग वीमेन, चेतना पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. सिंह के0 पी0 – 'कैरियर ऑफ फैमिली वीमेन टू वर्क्सः ए स्टडी इन रोल कन्फ्लिक्ट'' इण्डियन जर्नल आफ सोशलवर्क, मुम्बई।
3. सेकर एण्ड स्मिथ (1962) –मैरिड वीमेन वर्कर्स, जार्ज एलेन एण्ड अनविन, लंदन।
4. नन्दा, बी0आर0 (1976) –इण्डियन वीमेन, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0 दिल्ली।
5. परमार, दुर्गा (1982) –श्रमजीवी महिलाएं और समकालीन पारिवारिक संगठन, साहित्य भवन आगरा।
6. सेनगुप्ता, पी0 (1960) –वीमेन वर्कर्स आफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।